

राम बाली राजभर

बनाम

पश्चिम बंगाल राज्य और अन्य

20 दिसंबर, 1974

[एम. एच. बेग, वाई. वी. चंद्रचूड़ और ए. सी. गुसा, जे. जे.]

आंतरिक सुरक्षा व्यवस्था अधिनियम- सार्वजनिक व्यवस्था- साधारण खण्ड  
अधिनियम की धारा 21 के साथ पठित धारा 14 - इसका दायरा।

याचिकाकर्ता को मीसा के तहत इस आधार पर हिरासत में लिया गया था कि दो  
मौकों पर उसने अपने सहयोगियों के साथ चाय की दुकान और घड़ी की मरम्मत की  
दुकान पर बम फेंके, जिससे फर्नीचर, घड़ियों के शोकेस आदि को नुकसान पहुंचा,  
जिससे लोगों के जीवन और सुरक्षा को खतरा पैदा हुआ और सार्वजनिक व्यवस्था में  
बड़ी बाधा पैदा की।

बंदी प्रत्यक्षीकरण याचिका में, याचिकाकर्ता ने नजरबंदी के आधारों को 'अस्पष्ट,  
गलत, दुर्भावनापूर्ण, काल्पनिक और गैर-मौजूद' बताते हुए चुनौती दी, कि निवारक  
निरोध के अनुमेय उद्देश्यों के आधारों और आधार में उल्लिखित अपराध के बीच कोई  
तर्कसंगत संबंध नहीं था जो कि सामान्य आपराधिक अभियोजन का विषय हो सकते हैं,  
लेकिन सार्वजनिक व्यवस्था का नहीं, जिसका उल्लंघन देश के आपराधिक कानून के  
केवल उल्लंघन से कुछ अधिक गंभीर है।

याचिका खारिज करते हुए, अभिनिर्धारित किया गया

(1) " सार्वजनिक व्यवस्था "अनिवार्य रूप से एक लोचदार अवधारणा है जो" राज्य की सुरक्षा "से व्यापक है-एक श्रेणी जिसे अधिनियम में विच्छेदात्मक समुच्चयबोधक "या" द्वारा अलग किया गया है। [66 बी]

(2) कुछ मामलों में, तथ्य स्पष्ट रूप से संकेत दे सकते हैं कि एक साधारण आपराधिक अभियोजन पर्याप्त होगा और वर्तमान मामला उन मामलों में से एक नहीं है। [66 सी]

(3) निरोध के मामले में, न्यायालय को हिरासत में लेने वाले अधिकारियों की व्यक्तिपरक संतुष्टि को अपनी राय से प्रतिस्थापित करने से बचने के लिए सावधान रहना होगा, और हस्तक्षेप केवल तभी उचित हो सकता है जब यह स्पष्ट हो कि कोई भी उचित व्यक्ति उन आधारों पर संतुष्ट नहीं हो सकता है जिन आधारों पर व्यक्ति को हिरासत में लेने की आवश्यकता की जरूरत बताई गई हो। आवश्यक संतुष्टि में निरुद्ध से अपेक्षित आशंका को रोकने की उस आवश्यकता का संदर्भ होना चाहिए। पिछला आचरण या गतिविधि केवल वहाँ तक प्रासंगिक है जहाँ तक यह आशंका के लिए उचित आधार प्रस्तुत करता है। रोकथाम और सजा के कुछ सामान्य अंतिम उद्देश्य होते हैं लेकिन उनके तत्काल उद्देश्य और कार्य के तरीके अलग-अलग होते हैं। [66 डी]

(4) वर्तमान मामले में, सलाहकार बोर्ड द्वारा याचिकाकर्ता की व्यक्तिगत सुनवाई की गई थी। बोर्ड ने एक और बंदी को सुना जिसे बाद में रिहा कर दिया गया। बोर्ड ने नहीं सोचा कि याचिकाकर्ता को रिहा किया जाना चाहिए। इससे पता चलता है कि सलाहकार बोर्ड ने याचिकाकर्ता के मामले में अपना दिमाग लगाया था। [67 एच]

(5) जहां तक हिरासत में लिए गए अधिकारियों के विवेक के उपयोग न करने का संबंध है, मामले के तथ्य कुछ और ही कहते हैं। चाय की दुकान के मालिक द्वारा शपथ पत्र के संबंध में, जिसकी दुकान पर हमला किया गया था, कि याचिकाकर्ता ने

उसकी दुकान पर हमला नहीं किया था, कलकत्ता उच्च न्यायालय की एक खंड पीठ द्वारा विचार किया गया था और यह उचित रूप से अभिनिर्धारित किया गया था कि शपथ पत्र प्रारंभिक निरोध आदेश को दूषित नहीं कर सकता था जो ऐसे समय में पारित किया गया था जब ऐसा कोई शपथ पत्र न तो हिरासत में लेने वाले अधिकारियों के समक्ष था और न ही सलाहकार बोर्ड के समक्ष रखा गया था। [68 डी]

(6) जहाँ तक राज्य सरकार को याचिकाकर्ता के दूसरे अभ्यावेदन का प्रश्न है, अधिनियम की धारा 14 के तहत, राज्य सरकार किसी भी समय निरोध आदेश को रद्द या संशोधित कर सकती हैं। अधिनियम की धारा 14 स्पष्ट रूप से उससे ज्यादा शक्ति देती है जो राज्य सरकार को साधारण खंड अधिनियम 1897 के धारा 21 से प्राप्त होती, जिसका अधिनियम की धारा 14 विशेष रूप से उल्लेख किए जाने से यह स्पष्ट होता है कि अधिनियम की धारा 14 की शक्ति आवश्यक रूप से साधारण खंड अधिनियम की धारा 21 के प्रावधान के अधीन नहीं है। इसका अर्थ है कि साधारण खंड अधिनियम 1897 के धारा 21 का पालन किए बिना भी राज्य सरकार के किसी आदेश को निरस्त करना या उसमें संशोधन करना संभव है; लेकिन दोनों प्रावधानों की सही व्याख्या यह होगी कि यह राज्य सरकार पर छोड़ दिया गया है कि वह अपने विवेकाधिकार का प्रयोग करते हुए, या तो वह साधारण खंड अधिनियम 1897 के धारा 21 के प्रावधानों के साथ पठित शक्ति का प्रयोग करे या धारा 21 की सहायता के बिना। 21. [69 बी-डी]

(7) इसके अलावा, बंदी द्वारा नई सामग्री पर किए गए अभ्यावेदन को अस्वीकार करने से पहले, यह उचित होगा कि अधिनियम की धारा 14 के तहत शक्ति का विवेकपूर्ण प्रयोग करके मामले को एक बार फिर सलाहकार बोर्ड को उसकी राय के लिए भेजने के लिए संदर्भित किया जाये, और तब सलाहकार बोर्ड प्रक्रिया के ऐसे हिस्सों को

अपना सकता है जो अधिनियम की धारा 11 में दिये गए हैं और दूसरे अभ्यावेदन पर लागू कर सकते हैं।[69 ई-एफ; 70 बी]

(8) बंदी प्रत्यक्षीकरण याचिका पर, न्यायालय द्वारा क्या विचार किया जाना है, वह यह है कि हिरासत प्रथम दृष्टया कानूनी है या नहीं, और यह नहीं है कि हिरासत में लेने वाले अधिकारियों ने तथ्य के हर सवाल पर गलत या सही तरीके से संतुष्टि प्राप्त की है या नहीं। इसके अलावा, बंदी प्रत्यक्षीकरण याचिका में, याचिकाकर्ता को आंतरिक सुरक्षा व्यवस्था अधिनियम, 1971 के तहत मामले में यह दिखाना होगा कि धारा 21 या धारा 22 का उल्लंघन हुआ है। [70 ई-एफ; 71 ए]

वर्तमान मामले में, न्यायालय निर्देश देता है कि राज्य सरकार, याचिकाकर्ता के लंबित नए अभ्यावेदन पर निर्धारित कानून के अनुसार शीघ्र निर्णय लेने पर विचार करेगी।

मौलिक क्षेत्राधिकार: रिट याचिका संख्या 322/1974

(भारत के संविधान के अनुच्छेद 32 के तहत याचिका।)

याचिकाकर्ता के लिए पी. के. चटर्जी।

प्रतिवादियों की ओर से डी. एन. मुखर्जी और जी. एस. चटर्जी।

न्यायालय का निर्णय बेग, जे. द्वारा दिया गया - याचिकाकर्ता, राम बाली राजभर, भारत के संविधान के अनुच्छेद 32 के तहत इस बंदी प्रत्यक्षीकरण याचिका में, पुलिस आयुक्त, कलकत्ता द्वारा 1-10-1973 को आदेशित हिरासत से रिहाई की मांग करते हैं जिसके बारे में उन्हें उसी दिन सूचना दे दी थी, और जो निम्नलिखित आधारों पर हैं:

"(1) 5-9-1973 को लगभग 17-40 बजे, आप अपने सहयोगियों अनवर हुसैन, निवासी-18/2, मोमिनपुर रोड, सुबल दास निवासी- में झुपरी, डॉक ईस्ट बाउंड्री रोड, कलकत्ता के साथ और अन्य लोगों ने, जो लोहे की छड़ों, लाठियों और बमों से लैस थे, ने 19, कोल बर्थ, कलकत्ता में लाल मोहन जादव की चाय की दुकान पर बम फेंककर, स्टॉल-मालिक और आस-पास के अन्य दुकानदारों के जीवन और सुरक्षा को खतरे में डालते हुए, सार्वजनिक व्यवस्था में बड़ी गड़बड़ी पैदा की, क्योंकि उसने बिना भुगतान के आप सभी को चाय की आपूर्ति करने से इनकार कर दिया था। इस घटना से इलाके में व्यापक दहशत फैल गई, दुकानें बंद हो गईं, वाहनों का आवागमन रुक गया, जिससे सार्वजनिक व्यवस्था का रखरखाव खतरे में पड़ गया।

(2) 7-9-1973 को लगभग 20.05 बजे, आप अपने साथियों स्ट्रैंड रोड, कलकत्ता के झुपरी के काली दास उर्फ टेनिया, 5/2 भूकैलाश रोड के सुबेद अली और अन्य के साथ, सभी लोहे की छड़ों, लाठियों और बमों से लैस होकर एक घड़ी मरम्मत की दुकान, नामक मेसर्स बब्लू वॉच एंड रिपेयरिंग कंपनी, 52, सर्कुलर गार्डन रीच रोड, कलकत्ता पर बम फेंककर हमला किया और फर्नीचर, घड़ियां, कथित दुकान के शो-केस को नुकसान पहुंचाया क्योंकि इस दुकान के मालिक एस के अजीम ने पहले आप सभी को शराब के लिए पैसे देने से मना कर दिया था, जब स्थानीय लोग बीच-बचाव करने आये तो आप सभी ने उन्हें मारने के उद्देश्य से अंधाधुंध बम फेंके। इस घटना ने जनता के मन में भय, दहशत और असुरक्षा पैदा कर दी जिससे सार्वजनिक व्यवस्था प्रभावित हुई।

और यदि स्वतंत्र और निरंकुश छोड़ दिया गया तो आप ऊपर बताए गए तरीके से कृत्य करके सार्वजनिक व्यवस्था के रखरखाव में बाधा डालना जारी रख सकते हैं।"

याचिकाकर्ता की शिकायत है कि हिरासत के आधार "अस्पष्ट, झूठे, दुर्भावनापूर्ण, काल्पनिक, अस्तित्वहीन" हैं। यह निवेदन किया गया है कि निवारक निरोध की अनुमत वस्तुओं के साथ इन आधारों का कोई तर्कसंगत संबंध नहीं है। यह आग्रह किया जाता है कि जिन आपराधिक अपराधों के लिए कानून और व्यवस्था बनाए रखने के लिए जिम्मेदार अधिकारी सामान्य आपराधिक मुकदमा चला सकते हैं, उन्हें हिरासत के आदेशों की विषय वस्तु नहीं बनाया जाना चाहिए। यह तर्क दिया गया है कि "सार्वजनिक व्यवस्था", केवल आपराधिक कानून के उल्लंघन से कहीं अधिक गंभीर है; जिसके लिए अपराधी को सामान्य कानून के तहत निपटा जाना चाहिए। यह सुझाव दिया गया है कि धारा 3(ए)(ii) में उल्लिखित "सार्वजनिक व्यवस्था" को "राज्य की सुरक्षा" के साथ जोड़कर पढ़ा जाना चाहिए ताकि केवल वही व्यक्ति जो ऐसी गतिविधियों में शामिल हो जो राज्य की सुरक्षा को खतरे में डालती है पर निवारक निरोध से संबंधित प्रावधानों के अंतर्गत कार्रवाई होनी चाहिए।

हमारा मानना है कि यह तर्क देने में बहुत देर हो चुकी है कि आंतरिक सुरक्षा व्यवस्था अधिनियम (बाद में 'अधिनियम' के रूप में संदर्भित) के प्रावधानों का कोई दुरुपयोग हुआ है, केवल इसलिए, क्योंकि इस संतुष्टि पर पहुंचने के लिए कि राज्य की सुरक्षा या सार्वजनिक व्यवस्था बनाए रखने के प्रयोजनों के लिए किसी व्यक्ति को हिरासत में लेना आवश्यक है, आपराधिक गतिविधि के कुछ उदाहरण दिए जाते हैं, चाहे वे सफल या असफल अभियोजन का विषय हो सकते थे या होते। (देखें: गोलम हुसैन उर्फ गामा बनाम पुलिस आयुक्त कलकत्ता एवं अन्य ([1974] (4) एससीसी पृष्ठ 530), मिलन बनिक बनाम पश्चिम बंगाल राज्य एवं अन्य ( एआईआर 1972 एससी 1214), मोहम्मद सलीम खान बनाम श्री सीसी बेस उप सचिव पश्चिम बंगाल सरकार एवं अन्य (एआईआर 1972 एससी 1670), सस्ती उर्फ सतीश चौधरी बनाम पश्चिम बंगाल राज्य (1973- 1 एससीआर 467)। ऐसे आधारों पर आधारित आदेश को केवल इस कारण से

बाहरी विचारों से प्रभावित या दुर्भावनापूर्ण नहीं कहा जा सकता है। इस विषय पर कानूनी स्थिति हाल ही में इस न्यायालय की संविधान पीठ द्वारा हराधन साहा बनाम पश्चिम बंगाल राज्य और अन्य (एआईआर 1974 एससी 2154 2160 पर), में स्पष्ट की गई है, - जहां यह बताया गया था, पी.2160):

"निवारक हिरासत की शक्ति दंडात्मक हिरासत से गुणात्मक रूप से भिन्न है। निवारक हिरासत की शक्ति एक एहतियाती शक्ति है जिसका प्रयोग उचित प्रत्याशा में किया जाता है। यह किसी अपराध से संबंधित हो भी सकता है और नहीं भी। यह कोई समानांतर कार्यवाही नहीं है। यह अभियोजन के साथ अधिव्यापन नहीं करती, भले ही यह कुछ तथ्यों पर निर्भर हो जिसके लिए अभियोजन चलाया जा सकता है या चलाया जा चुका है। अभियोजन से पहले या उसके दौरान निवारक हिरासत का आदेश दिया जा सकता है। निवारक हिरासत का आदेश अभियोजन के साथ या उसके बिना, और प्रत्याशा में या उन्मोचन (डिस्चार्ज) के बाद या यहां तक कि बरी किए जाने के बाद भी दिया जा सकता है। अभियोजन का लंबित रहना निवारक हिरासत के आदेश पर कोई रोक नहीं है। निवारक हिरासत का आदेश भी अभियोजन में बाधा नहीं है।"

"सार्वजनिक व्यवस्था" आवश्यक रूप से एक लोचदार अवधारणा है, जो किसी भी सूरत में, "राज्य की सुरक्षा" से कहीं अधिक व्यापक है - एक श्रेणी जिसे अधिनियम में विच्छेदात्मक समुच्चयबोधक "या" द्वारा अलग किया गया है। यह सच है कि, कुछ मामलों में, तथ्य इतने स्पष्ट रूप से संकेत दे सकते हैं कि एक सामान्य आपराधिक मुकदमा पर्याप्त होगा, कि अधिनियम के उद्देश्यों में से किसी एक के लिए अपराधी को हिरासत में लेने का आदेश देने की आवश्यकता उचित रूप से नहीं बनती। हालाँकि, हमारे सामने जो मामला है, वह उन मामलों में से एक नहीं है। हिरासत में लेने वाले अधिकारियों की व्यक्तिपरक संतुष्टि के लिए क्या पर्याप्त है, इसके बारे में

अपनी राय को प्रतिस्थापित करने से बचने के लिए हमें सावधान रहना होगा, जिसमें हस्तक्षेप को केवल तभी उचित ठहराया जा सकता है जब यह स्पष्ट हो कि कोई भी उचित व्यक्ति संभवतः हिरासत में लेने की आवश्यकता के दिये गए आधारों के बारे में संतुष्ट नहीं हो सकता है, जिस स्थिति में निरोध हिरासत में रखने की शक्ति से अधिक होगा। आवश्यक संतुष्टि में बंदी से जो प्रत्याशा है उसे रोकने की आवश्यकता का संदर्भ होना चाहिए। पिछला आचरण या गतिविधि केवल तभी तक प्रासंगिक है जब तक वह आशंका के लिए उचित आधार प्रदान करता है। रोकथाम और सजा के कुछ सामान्य अंतिम उद्देश्य हैं लेकिन उनके तात्कालिक उद्देश्य और कार्रवाई के तरीके अलग-अलग हैं।

ऊपर उद्धृत निर्णयित मामलों के तथ्यों का संदर्भ यह संकेत देता है कि यह पर्याप्त नहीं है कि 5-9-1973 की घटना में याचिकाकर्ता की कथित भागीदारी के लिए याचिकाकर्ता के खिलाफ 6-9-1973 को आपराधिक अभियोजन शुरू किया गया था। हालाँकि, यह आरोप लगाया गया है कि 20-11-1973 को, लाल मोहन जादव, जिनकी चाय की दुकान पर कई लोगों ने हमला किया था, जिनमें राज्य के अनुसार, याचिकाकर्ता भी शामिल था, ने खुद एक हलफनामा दिया था जिसमें उन्होंने कहा था कि वह याचिकाकर्ता को जानता था और कह सकता था कि याचिकाकर्ता ने उसकी चाय की दुकान पर हुए हमले में भाग नहीं लिया था।

इस न्यायालय में अपने जवाबी हलफनामे में, पुलिस मिशनर, कलकत्ता, प्रतिवादी संख्या 2 ने घटनाओं का निम्नलिखित क्रम दिया जिस पर याचिकाकर्ता की असहमति नहीं है:

1. याचिकाकर्ता को आपराधिक अदालत ने 1-10-1973 को बरी कर दिया था, जिस तारीख को पुलिस आयुक्त द्वारा निरोध का आदेश दिया गया था।



2. याचिकाकर्ता को 1-10-1973 को हिरासत के आधार भी दिए गए थे।
3. 18-10-1973 को, याचिकाकर्ता द्वारा उसकी नजरबंदी के खिलाफ एक अभ्यावेदन राज्य सरकार द्वारा प्राप्त किया गया था।
4. 22-10-1973 को, पुलिस आयुक्त के निरोध आदेश को राज्य सरकार द्वारा अनुमोदित किया गया था।
5. 23-10-1973 को, राज्य सरकार ने उन आधारों के साथ जिसके आधार पर नजरबंदी का आदेश दिया गया था, इसके खिलाफ याचिकाकर्ता द्वारा दिया गया अभ्यावेदन, और पुलिस आयुक्त द्वारा अधिनियम की धारा 3, उपधारा 3 के तहत बनाई गई एक रिपोर्ट के साथ याचिकाकर्ता के मामले को सलाहकार बोर्ड को भेजा:
6. 5-11-1973 को, सलाहकार बोर्ड ने मामले की जांच करने के बाद, राज्य सरकार को अपनी राय दी कि याचिकाकर्ता की हिरासत के लिए पर्याप्त कारण थे।
7. राज्य सरकार ने 8-11-1973 को नजरबंदी आदेश की पुष्टि की और 14-11-1973 को याचिकाकर्ता को जेल में उसका आदेश तामील कराया गया।
8. 20-11-1973 को, लाल मोहन जादव ने अलीपुर में मजिस्ट्रेट प्रथम श्रेणी की अदालत में एक हलफनामा दायर किया, जिसमें कहा गया कि याचिकाकर्ता राम बली राजभर ने 5-9-1973 को उनकी दुकान पर हुए हमले में भाग नहीं लिया था और इसी कारण से उन्होंने प्रथम सूचना रिपोर्ट में उनका नाम नहीं लिखा।
9. 27-11-1973 को याचिकाकर्ता ने दूसरा अभ्यावेदन दिया जो 28-11-1973 को राज्य सरकार को प्राप्त हुआ। यह अभी भी विचाराधीन था जब याचिकाकर्ता ने अपनी हिरासत

पर सवाल उठाते हुए कलकत्ता उच्च न्यायालय में संविधान के अनुच्छेद 226 के तहत एक रिट याचिका दायर की।

10. 21-3-1973 को कलकत्ता उच्च न्यायालय ने बंदी प्रत्यक्षीकरण याचिका को खारिज कर दिया।

याचिकाकर्ता का दावा है कि, जिस आधार पर उसे हिरासत में लिया गया था, उसी आधार पर, गुरमेल सिंह के बेटे कमल सिंह उर्फ टाइगर, जिस पर याचिकाकर्ता की तरह, कलकत्ता में "बेघर" होने का आरोप लगाया गया था, को हिरासत में लिया गया था, लेकिन उसके मामले पर सलाहकार बोर्ड द्वारा विचार के बाद रिहा कर दिया गया। याचिकाकर्ता ने कमल सिंह के मामले पर राज्य सरकार के आदेश की एक प्रति संलग्न की है जिससे पता चलता है कि, हालांकि, कमल सिंह ने अधिनियम की धारा 8 के तहत राज्य सरकार को कोई अभ्यावेदन नहीं किया, फिर भी उन्हें रिहा कर दिया गया क्योंकि सलाहकार बोर्ड ने अपने सामने रखी गई सभी सामग्रियों पर विचार करने के बाद और कमल सिंह उर्फ टाइगर को व्यक्तिगत रूप से सुनने के बाद रिपोर्ट दी कि उनकी राय में, कमल सिंह की "हिरासत के लिए कोई पर्याप्त कारण नहीं" मौजूद था। कमल सिंह के मामले के बारे में याचिकाकर्ता के दावे पर पुलिस आयुक्त ने अपने हलफनामे के पैराग्राफ 20 में कहा, कि वे याचिकाकर्ता के मामले के लिए प्रासंगिक नहीं हैं। हमें लगता है कि वे यह निर्धारित करने के लिए प्रासंगिक होंगे कि याचिकाकर्ता और कमल सिंह के मामले समान या भिन्न थे। यह स्पष्ट है कि हालांकि कमल सिंह को समान आधारों पर निरुद्ध किया गया और उसी प्रकार से उसे "बेघर" के रूप में वर्णित किया गया है, उसने व्यक्तिगत सुनवाई के लिए दरख्वास्त की जो उसे प्राप्त हुई, जिसने सलाहकार बोर्ड को संतुष्ट किया की उसका निरोध उचित नहीं था। जाहिर है, याचिकाकर्ता इसी तरह, सलाहकार बोर्ड को यह मानने के लिए राजी नहीं कर सका कि

उसका मामला उसी श्रेणी में आता है। इसलिए, यह दर्शाता है कि सलाहकार बोर्ड ने याचिकाकर्ता के मामले में अपना दिमाग लगाया, जो उसकी राय में, कमल सिंह के मामले से एक अलग वर्ग में था।

याचिकाकर्ता के विद्वान वकील ने तब तर्क दिया कि ऐसा प्रतीत होता है कि हिरासत में लेने वाले अधिकारियों ने याचिकाकर्ता के मामले में अपना दिमाग नहीं लगाया जैसा कि उन्हें करना चाहिए था और यह इस तथ्य से स्पष्ट है कि उसे 'बेघर' के रूप में वर्णित किया गया है जबकि उसके पास धन उधार देने का लाइसेंस है और उसका पता कलकत्ता का है। यह सुझाव दिया गया था कि याचिकाकर्ता को उसके कुछ देनदारों द्वारा झूठा और दुर्भावनापूर्ण रूप से फंसाया गया होगा और यदि हिरासत में लेने वाले अधिकारियों ने तथ्यों की ठीक से जांच की होती तो उन्हें इसका पता चल जाता। इस तरह के अनुमान के समर्थन में, यह प्रस्तुत किया गया था कि यह आरोप लगाया गया था कि याचिकाकर्ता ने एक चाय की दुकान पर हुए हमले में भाग लिया था, जबकि चाय की दुकान चलाने वाले लाल मोहन जादव ने खुद शपथ ली थी कि याचिकाकर्ता ने हमले में भाग नहीं लिया था। दूसरी ओर, कलकत्ता के पुलिस आयुक्त द्वारा दिए गए हलफनामे में यह दावा किया गया है कि आयुक्त विश्वसनीय अधिकारियों के माध्यम से की गई पूछताछ से संतुष्ट थे कि याचिकाकर्ता ने कथित घटना में भाग लिया था, हालांकि छूटने के बाद उसने लाल मोहन जादव से हलफनामा ले लिया होगा, सुझाव यह है कि याचिकाकर्ता की छुट्टी के बाद शपथ पत्र बेईमानी से शपथ दिलवा कर लिया गया था।

कलकत्ता उच्च न्यायालय की एक खंडपीठ ने याचिकाकर्ता की हिरासत पर लाल मोहन जादव के हलफनामे के प्रभाव पर विचार किया था। हमारी राय में, यह सही माना गया था कि हलफनामा प्रारंभिक हिरासत आदेश को रद्द नहीं कर सकता है जो

उस समय पारित किया गया था जब हलफनामे में शामिल ऐसी कोई भी जानकारी ना तो हिरासत में लेने वाले अधिकारियों के सामने थी ना ही सलाहकार बोर्ड के सामने रखी गई थी। याचिकाकर्ता ने यह दावा नहीं किया था कि उसे सलाहकार बोर्ड द्वारा व्यक्तिगत सुनवाई नहीं मिली या उसे अपना अभ्यावेदन देने या सलाहकार बोर्ड के समक्ष अपना मामला पूरी तरह से रखने का पूरा अवसर नहीं मिला, जो निष्पक्ष रूप तथ्य के हर प्रश्न पर हर आरोप पर विचार कर सकता था। याचिकाकर्ता ने कलकत्ता के पुलिस आयुक्त या किसी अन्य अधिकारी पर उसके प्रति शत्रुता का आरोप नहीं लगाया है। हमारे सामने मौजूद तथ्यों पर, हम संतुष्ट नहीं हो सकते हैं कि न तो हिरासत में लेने वाले अधिकारियों और न ही सलाहकार बोर्ड ने याचिकाकर्ता के मामले से संबंधित सभी प्रासंगिक तथ्यों की ठीक से जांच की थी या अपना दिमाग लगाया। फिर भी, पुलिस आयुक्त के हलफनामे से, यह हमें प्रतीत होता है कि राज्य सरकार ने याचिकाकर्ता के दूसरे अभ्यावेदन पर शायद इस विश्वास के कारण कोई आदेश पारित नहीं किया गया कि जब याचिकाकर्ता की बंदी प्रत्यक्षीकरण याचिका लंबित है, तो उस पर कोई भी आदेश पारित करना अनुचित हो सकता है। अब, जबकि इस न्यायालय के साथ-साथ कलकत्ता उच्च न्यायालय ने याचिकाकर्ता की बंदी प्रत्यक्षीकरण याचिकाओं पर विचार कर लिया है, राज्य सरकार के लिए अब कोई कारण नहीं हो सकता है कि याचिकाकर्ता के दूसरे अभ्यावेदन पर आगे की जांच या कार्रवाई में देरी करे। यहां सवाल यह उठता है: कि राज्य सरकार याचिकाकर्ता के दूसरे अभ्यावेदन पर क्या कार्रवाई कर रही है?

अधिनियम की धारा 14 (1) में कहा गया है:

14(1) सामान्य धारा अधिनियम, 1897 की धारा 21 के प्रावधानों पर प्रतिकूल प्रभाव डाले बिना, किसी भी समय हिरासत आदेश को रद्द या संशोधित किया जा सकता है-

(ए) इस बात के बावजूद कि आदेश धारा 3 की उपधारा (2) में उल्लिखित एक अधिकारी द्वारा, उस राज्य सरकार द्वारा किया गया है जिसके वह अधिकारी अधीनस्थ है या केंद्र सरकार द्वारा;

(बी) इसके बावजूद, आदेश राज्य सरकार द्वारा, केंद्र सरकार द्वारा किया गया है।

राज्य सरकार किसी निरोध आदेश को रद्द या संशोधित कर सकती है यदि वह नई या पर्यवेक्षण शर्तों या तथ्यों के प्रकाश में आने पर संतुष्ट हो कि निरस्तीकरण या संशोधन आवश्यक हो गया है। अधिनियम की धारा 14 स्पष्ट रूप से राज्य सरकार को साधारण खण्ड अधिनियम 1897 की धारा 21 की तुलना में व्यापक शक्ति प्रदान करती है, जिसका अधिनियम की धारा 14 में विशेष रूप से उल्लेख होने से, ऐसे मामलों में लागू किया जाता है। हालाँकि, अधिनियम की धारा 14 की भाषा यह स्पष्ट करती है कि धारा 14 के तहत शक्ति आवश्यक रूप से सामान्य धारा अधिनियम की धारा 21 के प्रावधानों के अधीन नहीं है। इसका मतलब है कि राज्य सरकार के किसी आदेश को रद्द करना या संशोधित करना, साधारण खंड अधिनियम की धारा 21 में निर्धारित प्रतिबंधों का अनुपालन किए बिना भी संभव है। फिर भी, चूंकि अधिनियम की धारा 14 के तहत व्यापक शक्ति "साधारण खंड अधिनियम की धारा 21 की अवहेलना नहीं करती है लेकिन उसके प्रावधानों पर प्रतिकूल प्रभाव डाले बिना मौजूद रहती है, हम सोचते हैं कि प्रावधानों की सही व्याख्या, साथ पढ़ने पर, यह होगी कि यह राज्य सरकार पर छोड़ दिया गया है कि वह अपने विवेक का इस्तेमाल करते हुए या तो साधारण धारा अधिनियम की धारा 21 के प्रावधानों के साथ पढ़ी गई शक्ति का प्रयोग कर सकती है या सामान्य धारा अधिनियम की धारा 21 की सहायता के बिना।

हमारा मानना है कि यह अधिनियम की धारा 14 के तहत शक्ति का एक उचित और विवेकपूर्ण प्रयोग होगा कि किसी मामले को एक बार फिर से सलाहकार बोर्ड को

उसकी राय के लिए भेजा जाए, इससे पहले कि किसी बंदी द्वारा नये तत्वों पर किए गए बाद के प्रतिनिधित्व को खारिज कर दिया जाए। यह सच है कि अधिनियम की धारा 10 के तहत जिन शर्तों के तहत सलाहकार बोर्ड की राय के लिए संदर्भ दिया गया है, उन्हें दोहराया नहीं जा सकता है। यह भी स्पष्ट है कि संदर्भित करने का स्पष्ट और अनिवार्य कर्तव्य अधिनियम की धारा 10 द्वारा निर्धारित शर्तों के तहत ही उत्पन्न होता है, और समय-समय पर सलाहकार बोर्ड की राय मांगने के लिए कोई विशिष्ट या अलग प्रावधान नहीं है। फिर भी, यदि अधिनियम की धारा 14 के तहत शक्ति का प्रयोग उसी तरीके से और समान प्रतिबंधों और शर्तों (यदि कोई हो) के अधीन किया जा सकता है, तो साधारण धारा अधिनियम की धारा 21 द्वारा नियोजित भाषा का उपयोग करने के लिए, हम केवल "समान तरीके" और "समान शर्तों" के अधीन की व्याख्या समान और न कि अभिन्न तरीके और शर्तों के रूप में कर सकते हैं। हमारा मानना है कि ऐसी स्थिति जिसमें हिरासत आदेश को रद्द करने या संशोधित करने की शक्ति दूसरे या बाद के अभ्यावेदन द्वारा लागू की जाती है, हस्तक्षेप करने वाली घटनाओं के लिए अनुमति देने के बाद, जिन्हें अस्तित्व से मिटाया नहीं जा सकता है, की तुलना की जा सकती है और ऐसी स्थिति से मिलती जुलती है जिसमें अधिनियम की धारा 3(3) के तहत राज्य सरकार द्वारा हिरासत आदेश की मंजूरी या प्रारंभिक पुष्टि के बाद सलाहकार बोर्ड की राय मांगी जाती है, सलाहकार बोर्ड की राय का इंतजार किया जाता है, और अधिनियम की धारा 12 के तहत सरकार द्वारा अंतिम आदेश देने से पहले उससे काफी निष्पक्ष और स्वतंत्र रूप से कार्य करने की उम्मीद की जाती है। अधिनियम की धारा 10 केवल प्रथम अभ्यावेदन के लिए प्रावधान करती है। लेकिन, हमें ऐसा प्रतीत होता है कि अधिनियम की धारा 14 सपठित सामान्य धारा अधिनियम की धारा 21 के तहत शक्ति, जो विशेष रूप से अधिनियम की धारा 14 में उल्लिखित है, राज्य सरकार की उस शक्ति को संदर्भित कर सकती है जिसमें समान परिस्थिति में अगर राज्य सरकार समान प्रकार से

अभ्यावेदन को सलाहकार बोर्ड को संदर्भित करने का निर्णय लेती है। और, सलाहकार बोर्ड अधिनियम की धारा 11 में निर्धारित प्रक्रिया के ऐसे हिस्सों को अपना सकता है जिन्हें दूसरे अभ्यावेदन पर लागू किया जा सकता है। ऐसे मामले में, संदर्भ अधिनियम की धारा 10 के तहत नहीं होगा, बल्कि अधिनियम की धारा, 14 के तहत सपठित सरकार की शक्ति को संरक्षित करने के आवश्यक निहितार्थ के साथ जिसमें साधारण खंड अधिनियम की धारा 21 में निर्धारित अनुसार कार्य कर सके। दूसरे शब्दों में, बाद का संदर्भ सरकार की कार्य करने के लिए आवश्यक रूप से निहित शक्ति के परिणामस्वरूप होगा। जहां तक संभव हो, अधिनियम की धारा, 12 के तहत प्रारंभिक हिरासत आदेश की पुष्टि या रद्द करने के लिए उसके द्वारा अपनाए गए तरीके की तरह। और, यदि सरकार के पास ऐसी शक्ति है कि वह नए आधारों पर बाद के अभ्यावेदन को अपनी राय के लिए सलाहकार बोर्ड को भेज सके, तो हमारा मानना है कि अधिनियम की धारा 11 द्वारा निर्धारित प्रक्रिया के अनुसार सलाहकार बोर्ड को अपनी राय देने के लिए एक तदनुरूप निहित शक्ति और दायित्व होगा, इस अपवाद के साथ कि ऐसे मामलों में हिरासत आदेश की तारीख से दस सप्ताह से अधिक लेकिन उचित समय के भीतर अपनी रिपोर्ट अनिवार्य रूप से प्रस्तुत करनी होगी।

हमें लगता है कि कलकत्ता उच्च न्यायालय को रिट याचिका को खारिज करते समय, चाय की दुकान के मालिक लाल मोहन जाधव द्वारा दिए गए शपथ पत्र के मूल्य के बारे में कोई राय व्यक्त करने की आवश्यकता नहीं थी। कि, हमारा मानना है कि तथ्य संबंधी प्रश्नों पर निर्णय लेना अधिनियम के तहत गठित प्राधिकारियों का कार्य है। बंदी प्रत्यक्षीकरण याचिका पर, न्यायालय को इस बात पर विचार करना होगा कि क्या हिरासत प्रथम दृष्टया कानूनी है या नहीं, और यह नहीं कि क्या हिरासत में लेने वाले अधिकारी तथ्य के प्रत्येक प्रश्न पर गलत या सही तरीके से संतुष्ट हुए हैं। इसमें कोई संदेह नहीं है कि अदालतों को नागरिक की व्यक्तिगत स्वतंत्रता की उत्साहपूर्वक रक्षा

करनी चाहिए और यह सुनिश्चित करना चाहिए कि हिरासत में लेने वाले अधिकारियों और सलाहकार बोर्ड द्वारा हिरासत में लिए गए व्यक्ति के मामले पर उचित और निष्पक्ष रूप से विचार किया जाए और निपटाया जाए। लेकिन इसका मतलब यह नहीं है कि वो निवारक हिरासत के कानून द्वारा हिरासत में लेने वाले अधिकारियों और सलाहकार बोर्ड को दिये गए कर्तव्यों को सही और उचित तरीके से ग्रहण कर सकते हैं या उन्हें ऐसा करना होगा या तथ्य के प्रश्नों पर अपील की अदालतों के रूप में कार्य कर सकता है। निवारक निरोध का कानून, चाहे हम इसे पसंद करें या नहीं, हमारे संविधान द्वारा अधिकृत है क्योंकि संविधान निर्माताओं ने यह अनुमान लगाया था कि राष्ट्र के जीवन में ऐसे अवसर आ सकते हैं जब नागरिकों को ऐसे तरीके से कार्य करने से रोकने की आवश्यकता जो किसी स्थापित आदेश के आधारों को गैरकानूनी तरीके से बाधित या तोड़ सकते हैं, व्यक्तिगत स्वतंत्रता के अधिकारों से ज्यादा महत्वपूर्ण हो सकती है।

संविधान के अनुच्छेद 32 के तहत प्रत्येक याचिकाकर्ता को मौलिक अधिकार का उल्लंघन स्थापित करना होगा। इसलिए, यह न्यायालय बंदी प्रत्यक्षीकरण याचिका पर तब तक हिरासत से रिहाई का आदेश नहीं दे सकता, जब तक कि वह संतुष्ट न हो जाए कि याचिकाकर्ता की हिरासत वास्तव में कानून द्वारा अनुचित है। इसका मतलब यह है कि, आंतरिक सुरक्षा व्यवस्था अधिनियम, 1971 के तहत हिरासत के मामले में, याचिकाकर्ता को संविधान के अनुच्छेद 21 या अनुच्छेद 22 का उल्लंघन दिखाना होगा। नागरिक की वह व्यक्तिगत स्वतंत्रता, जिसकी कानून इतनी दृढ़ता और सावधानी से रक्षा करता है, उसे भी कानून द्वारा स्थापित प्रक्रिया द्वारा छीन लिया जा सकता है, जब इसका उपयोग केवल निजी हितों के लिए नहीं बल्कि सार्वजनिक हित को खतरे में डालने के लिए किया जाता है।



याचिकाकर्ता के विद्वान वकील ऐसी सामग्री का संकेत नहीं दे सके जो हमें यह विश्वास दिला सके कि याचिकाकर्ता को संविधान के अनुच्छेद 21 या अनुच्छेद 22 के संरक्षण से वंचित किया गया है। यहां यह दिखाने के लिए कुछ भी नहीं है कि याचिकाकर्ता के पास अपनी हिरासत के खिलाफ प्रभावी अभ्यावेदन देने का अवसर नहीं था। हम इस बात से भी संतुष्ट नहीं हैं, जैसा कि हमने पहले ही संकेत दिया है, कि अधिनियम के तहत शक्तियों का उपयोग इस मामले में संपार्श्विक उद्देश्य के लिए या दुर्भावनापूर्ण तरीके से किया जा रहा है, क्योंकि याचिकाकर्ता के खिलाफ आपराधिक मुकदमा चलाया गया था जो विफल रहा। यह उन मामलों में से एक है जिसे सलाहकार बोर्ड और राज्य सरकार इस सवाल पर राय बनाने में ध्यान में रख सकती है कि क्या याचिकाकर्ता की हिरासत या निरंतर हिरासत आवश्यक है। अधिनियम के तहत दुर्भावनापूर्ण या शक्तियों के दुरुपयोग का मामला बनाने के लिए, हम सोचते हैं कि मौजूदा मामले में याचिकाकर्ता जो हमारे सामने रख पाया है, उससे बेहतर और अधिक ठोस सामग्री सामने आनी चाहिए।

हालाँकि, हमें यहाँ अवश्य देखना चाहिए कि ऊपर देखे गए कुछ तथ्य हिरासत में लेने वाले अधिकारियों और सलाहकार बोर्ड को सतर्क करने के लिए पर्याप्त हैं, ताकि वो संदिग्ध उद्देश्यों वाले व्यक्तियों के कहने पर कार्य करने वाले अधीनस्थ पुलिस अधिकारियों द्वारा यांत्रिक रूप से पुनः प्रस्तुत किए गए दावों से गुमराह किए जाने की संभावना की भी जांच करें। हिरासत में लेने वाले अधिकारी और सलाहकार बोर्ड इस पर निर्णय लेने के लिए सर्वोत्तम हैं। वे बेदाग रूप के एक अभेद्य लोहे के पर्दे को उठाने के लिए पर्याप्त शक्ति और साधनों से लैस हैं, जिसमें यह न्यायालय, अच्छे एवं ठोस कारणों के अभाव में, ईमानदारी, सावधानीपूर्वक, उचित और निष्पक्ष रूप से उपयोग की जाने वाली असीम शक्तियों के दुर्भावना या दुरुपयोग के पता लगाने के प्रयास में झाँकने की कोशिश नहीं करता है। यह न्यायालय मानता है कि उनका उपयोग उस तरह से तब

तक किया जा रहा है जब तक कि इसके विपरीत स्पष्ट न हो, लेकिन ऐसे किसी भी अनुमान से उन प्रयासों में बाधा नहीं उत्पन्न होने देना चाहिए जो निवारक निरोध की आवश्यकता निर्धारित करने से पहले, वास्तविक या संपूर्ण और अप्रकाशित सत्य की खोज करने के लिए हिरासत में लेने वाले अधिकारियों और सलाहकार बोर्डों द्वारा करने की आवश्यकता होती है। किसी भी सूरत में, किसी भी मात्र दिखावे या दम्भ या किसी भी पुलिस अधिकारी को एक- ईमानदार, सावधान और निष्पक्ष जांच और निर्णय के रास्ते में आने की अनुमति नहीं दी जानी चाहिए।

ऊपर दिए गए कारणों से, जबकि हम हिरासत आदेश को रद्द करने के लिए याचिकाकर्ता की प्रार्थना को अस्वीकार करते हैं, हम पश्चिम बंगाल सरकार को कानून और न्याय की आवश्यकताओं के अनुसार याचिकाकर्ता के लंबित नए अभ्यावेदन पर विचार करने और शीघ्र निर्णय लेने का निर्देश देते हैं। ऊपर हमारे द्वारा संकेत दिया गया है। इस निर्देश के अधीन यह याचिका खारिज की जाती है।

एस.सी.

याचिका खारिज

यह अनुवाद आर्टिफिशियल इंटेलिजेंस टूल 'सुवास' की सहायता से अनुवादक अशोक कुमार मीना द्वारा किया गया है।

**अस्वीकरण:** यह निर्णय पक्षकार को उसकी भाषा में समझाने के सीमित उपयोग के लिए स्थानीय भाषा में अनुवादित किया गया है और किसी अन्य उद्देश्य के लिए इसका उपयोग नहीं किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और आधिकारिक उद्देश्यों के लिए, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण ही प्रामाणिक होगा और निष्पादन और कार्यान्वयन के उद्देश्य से भी अंग्रेजी संस्करण ही मान्य होगा।